एवं सनातन है—यह गोपनीय ज्ञान है। परन्तु इससे आत्मा के सम्बन्ध में कोई निश्चयात्मक ज्ञान नहीं होता। कभी-कभी लोग इस भ्रान्ति में रहते हैं कि आत्मा देह से भिन्न तो है, परन्तु देहान्त अथवा देह से मुक्ति हो जाने पर वह शून्य अथवा निर्विशेष में लीन हो जाती है। परन्तु वास्तव में यह सत्य नहीं। यह किस प्रकार सम्भव है कि देह में अत्यन्त क्रियाशील रहने वाला आत्मा देह-मुक्ति होने पर निष्क्रिय हो जाय। आत्मा नित्य क्रियाशील है, क्योंकि यदि वह नित्य है तो नित्य क्रियाशील भी है। भगवद्धाम में उसके द्वारा सम्पादित कार्य-कलाप का ज्ञान परम गोपनीय है। आत्मा की इन्हीं क्रियाओं को यहाँ राजविद्या कहा गया है।

यह ज्ञान परम विशुद्ध क्रिया है, जैसा वैदिक शास्त्रों में उल्लेख है। 'पद्मपुराण' में मनुष्य के पापकर्मों का विश्लेषण कर यह सिद्ध किया गया है कि वे पाप के ही फल हैं। सकामकर्मी नाना प्रकार के पापों के बन्धन में पड़े हैं। उदाहरणस्वरूप, जब किसी वृक्ष के बीज का आरोपण किया जाता है तो वह तत्काल बढ़ता प्रतीत नहीं होता; उसे कुछ समय लगता है। पहले-पहले वह छोटे से अंकुर के रूप में दृष्टिगोचर होता है; बाद में वृक्ष के रूप में फलता-फूलता है। इस क्रम के पूर्ण होने पर ही बीज बोने वाला उसके फल-फूल का उपभोग कर पाता है। बीज के समान, मनुष्य के पापकर्म को भी फलित होने में समय लगता है। कर्मफल की भिन्न-भिन्न अवस्थायें हैं। पापकर्म से हट जाने पर भी पापकर्म के फल भोगने पड़ते हैं। इसका कारण यह है कि सब पाप एक साथ फल नहीं देते। जहाँ बहुत से पापकर्म अभी बीजरूप में ही होते हैं, वहाँ दूसरे पापों का फल सुख-दुःख के रूप में फलित हो जाता है। सातवें अध्याय के बीसवें श्लोक में यह कहा जा चुका है।

पापकर्म से बिल्कुल हटकर और प्राकृत-जगत् के द्वन्द्वों से मुक्त होकर जो पूर्ण रूप से सत्कर्म-परायण हो गया है, वह सज्जन भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति में निष्ठ हो जाता है। भाव यह है कि जो भक्तियोग के परायण हैं, वे पुरुष सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो चुके हैं। भगवद्भक्ति से भगवद्दासों का प्रारब्ध, संचित, बीज और क्रियमाण —सब प्रकार का पापकर्मफल शनैः-शनैः नष्ट हो जाता है। अतः भगवद्भक्ति में बड़ी पावनकारी शक्ति है। इसी को यहाँ **पवित्रं उत्तमम्** अर्थात् परम पवित्र कहा है। 'तम' का अर्थ प्राकृत-जगत् या अंधकार होता है। अतः 'उत्तम' उस तत्त्व का वाचक है, जो प्राकृत क्रियाओं से परे हो। भक्ति की क्रियाओं को प्राकृत कभी नहीं समझना चाहिए, चाहे कभी-कभी भक्त विषयी व्यक्तियों के समान ही क्रियाशील क्यों न लगें। भक्तियोग से परिचित तत्त्वद्रष्टा जानता है कि भक्तों की क्रियाएँ प्राकृत नहीं होतीं। वे सभी मायिक गुणों के विकार से पूर्ण मुक्त, अप्राकृत तथा भगवत्परायण हैं।

कहा जाता है कि भगवद्भक्ति का साधन इतना पूर्ण है कि परिणाम प्रत्यक्ष अनुभव में आ जाता है। हमें स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव है कि जो कोई भी श्रीकृष्ण के पावन नाम, **हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे** का कीर्तन करता है, उसे यथासमय चिन्मय रसानुभूति होती है और वह